



करिदार - २ अंतरंग कहानी

“मैं यहाँ नहीं रहती, मुंबई से कुछ दिनों के लिए यहाँ आई हूँ !”

“वैसे मैं भी मुंबई अक्सर आती हूँ ! पर आप तो मुझे अपने घर बुलाने से रही ! क्यों न आप मेरे घर आएँ, मैं वसंत-कुञ्ज में रहती हूँ।”

“तो इसका घर भी है !” मेरी आँखों में उतर आया कटाक्ष उससे छुपा नहीं रहा।

“कल आइये न ! लंच साथ करते हैं ! मैं बहुत अच्छा “शुक्तो” बनाती हूँ।”

“इस बार रहने दो, अगली बार जब दलिली आऊँगी तब तुम्हारे यहाँ आऊँगी !”

” नहीं नहीं ! कल क्यों नहीं?” अगर मुझे अच्छी तरह जानेंगी नहीं तो आपकी कहानी अधूरी रह जाएगी !” उसने शरारती मुस्कराहट से कहा।

मैं फिर उसकी आँखों की गरिफ्त में आ गई, बोली- चलो कल मिलते हैं, लेकिन मुझे वसंत-कुञ्ज का ज़रा भी आइडिया नहीं।”

“मैं आपके मोबाईल पर आपको रास्ता समझाती जाऊँगी और वैसे भी ‘कोर्नर पॉइंट’ से आप मेरा पता पूछेंगी तो उनका लड़का आपको मेरे घर तक पहुँचा देगा। वह ऐसे बात कर रही थी जैसे पक्की गृहस्थनि हो !

मुझे लंच का नमिंत्रण दे वह उठ खड़ी हुई- अब चलती हूँ, कल आपका इंतज़ार करूँगी। ‘डचि’ मत करयिगा !

और वह हवा में हाथ हलिते हुए मुड़ गई।

वह चली गई और मुझे सोचता छोड़ गई !

दूटती वर्जनाएँ और उसका परत दर परत खुलता मन मेरे दिलि और दमिाग को बौखला गया। उसके मन पर कोई बोझ नहीं, चाहतों पर कोई बंधन नहीं और तो और कोई अपराध बोध भी नहीं !

पर मैं ऐसी गलती नहीं कर सकती, मैं उसके घर सुबोध को बनिा बताए नहीं जाऊँगी, पर सुबोध से क्या कहूँगी, आज दिनि भर कहाँ रही? दोस्ती भी की तो ऐसी लड़की से जो अपनी शर्तों पर अपनी पसंद के पुरुषों का साथ चुनती है !

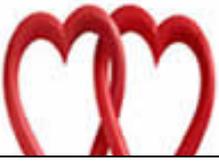
“व्हाट एन अचीवमेंट !”

उफ़ क्या सोचेंगे सुबोध ! “तुम्हें दोस्ती करने के लिए ऐसी ही लड़की मिली थी?”

तब मेरे पास क्या जवाब होगा? इसी उधेड़बुन में उलझी मैं होटल पहुँच गई। दमिाग थक चुका था इसलिए लेटते ही सो गई। सुबोध के आने पर जगी तो सुबोध मारे खुशी के झूम रहे थे, कम्पनी ने उन्हें मार्केटिंग डायरेक्टर के खतिाब से नवाज़ा था

उनका जोश कारा बोस के जकिर से कहीं ठण्डा न पड़ जाये ऐसा सोच कर मैंने इस बात को वहीं दबा दिया। वैसे भी मैं कौन सा जा ही रही हूँ जो उसके बारे में बात करूँ ! और फिर मैं सुबोध की खुशी में ऐसी शामलि हुई कि फिर रात भर कारा

बोस दमिाग में लौट कर आई ही नहीं !डनिर कर कर लौटे तो सुबोध अपने मार्केटिंग डायरेक्टर के मलि तमगे में पूरी तरह डूब चुके थे, करयिर में मलिी सफलता के सुर्र का असर उनकी चाल से भी छलक पड़ रहा था।



मैं कपड़े बदल कर जब बसितर पर पहुँची तो सुबोध को नींद आ चुकी थी, आधी रात तो बीत ही गई थी।

सुबह आँख देर से खुली।

सुबोध न्यूज पेपर के साथ चाय की चुस्कियाँ लेते दखि। आज जतिना खुश मैंने सुबोध को कभी नहीं देखा था।

मुझे चाय का कप थमाते हुए बोले- सभी अखबारों के बजिनेस पेज पर मेरे ऊपर राइट अप है। अब यह मीडिया अलग पीछे लग जायेगा ! आज 10 बजे बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की मीटिंग भी है।

मैं समझ गई, अभी जम्मेदारियाँ कम नहीं थी, ऊपर से यह नया प्रमोशन वक्त को लेकर मेरे और सुबोध के बीच खींचतान बढ़ जाएगी।

मेरे मोबाईल पर मैसेज बीप बज उठी। मैसेज पढ़ा, लखा था- लंच पर आपका इंतज़ार करूँगी !

सुबह सुबह मैसेज की शकल में कारा बोस फरि प्रकट हो गई। मैं अभी तक सुबोध को उसके बारे में कुछ भी बताने की हिम्मत नहीं जुटा पाई थी। मैंने धीरे से बात शुरू की- आज मेरा लंच बाहर है।

“तो जाओ न ! एन्जॉय योर सेल्फ !”

मेरा लंच कहाँ है, किसके साथ है ! सुबोध ने पूछना भी जरूरी नहीं समझा। मैंने भी अपने आपको समझा लिया, ऐसी क्या गलती कर रही हूँ जो सुबोध को अभी से बता कर परेशान कर दूँ। उनसे हर बात शेयर करना जरूरी भी तो नहीं, बच्ची थोड़ी

न हूँ जो कोई मुझे बरगला लेगा ! भगवान् जाने जाती भी हूँ या नहीं? अगर गई तो वहाँ से लौट कर सुबोध को सारा कसिसा सुनाऊँगी।

कड़कती ठण्ड और धूप का नाम तक नहीं, दोपहर होने तक पता नहीं किस तलाश के पीछे मैं उसके घर के लिए निकल पड़ी।

उसका घर दूँढने में कोई मुश्किल नहीं हुई, कुछ ही समय बाद मैं उसके फ्लैट के सामने खड़ी थी। मैंने कंपकंपी के साथ डोरबेल बजा दी।

दरवाज़ा उसी ने खोला, बसंती रंग के सलवार-कुरते में वह खिली खिली धूप सी लगी। घर के अन्दर कदम रखने से पहले की सहिरन, कमरे में बसे कपूर के अरोमा की वजह से गुनगुनी गर्माहट में तबदील हो गई।

जहाँ तक नज़र गई, हर कोना खूबसूरत और सुकून भरा लगा पलभर में जैसे मैं सारी दुनिया घूम आई।

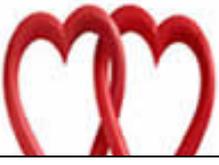
“अच्छा तो तुम आर्ट कलेक्टर भी हो?” उसकी पेंटिंग्स के कलेक्शन को देख कर मैंने पूछा।

“मैं कुछ इकठ्ठा नहीं करती, पर हाँ, पेंटिंग मेरा शौक है।” उसने गंभीरता से कहा।

संतरी रंग की दीवार पर ततिलियों के कई चित्रों को उसने फ्रेम करा कर सजा रखा था, दूसरी दीवार पर केनवस की बहुत बड़ी पेंटिंग लगी थी जिसमें नीले आकाश की गहराइयों को कमरे में खड़े होकर भी महसूस किया जा सकता था।

मुझे उन्हें नहिरता देख वह बोली- ओरेंज कलर को मैं मजबूत और गर्म-गुनगुने रंग की शकल में देखती हूँ और ततिलियाँ मुझे रंग और खुशबू के एहसास से भरती हैं।

“और नीला रंग?”



“नीला रंग मुझे शांति और सुकून देता है। इस रंग को देख कर मैं रलिल्स हो पाती हूँ ऐसे जैसे मेरी खड़िकी के बाहर नदी बह रही हो।”

घर को फर्नीचर से सजाने की बजाये उसने खूबसूरत चीजों से सजाया था। फर्नीचर के नाम पर चार गुजराती काम की छोटी चौकियाँ सजी थीं।

‘कहाँ बैठूँ?’ का सवाल लए मैं कमरे में जगह तलाशने लगी। एक नागा टोकरी में ढेर साड़ी सीपियाँ भरी रखी दिखीं। मैंने उसके पास रखी पीढ़ी पर बैठते हुए उससे पूछा- तुम शायद सपने बहुत देखती हो !

“अब यह मत कहियेगा किसपने देखना भी मेरा हक नहीं है। हाँ मैं सपने देखती हूँ पर मैं उनके बारे में बात नहीं करना चाहती ! सपने ही मेरी पूंजी हैं, उन्हें मैं किसी को दिखाना नहीं चाहती, कहीं आप उनमें से कुछ चुरा लें तो?”

मैं हंस दी- तुम्हारे इस घर में और कौन कौन है? मतलब तुम्हारा परिवार?

दर्द की कुछ हल्की लकीरें उभरी और खो गई बनिा किसी स्टाइल में बंधे अपने बालों में उसने अपनी उँगलियाँ उलझा ली जैसे कुछ छपि रही हो, नर्म और मुलायम बाल धीरे धीरे फसिलने लगे- मैं अकेली ही रहती हूँ !

कहते हुए वह मुड़ी, शायद रसोई में जा रही थी।

मैं उठी और उसके पीछे हो ली ! घर में वह अकेली है, यह मुझे पता था।

रसोई में खाने की महक भूख जगा रही थी।

“पहले कुछ पियेगी जूस या फ्रेश लाइम?” पूछते हुए उसने फ्रिज खोला।

“कुछ भी !” कहने के साथ मुझे लगा कि मेरी जुबां तालू से चपिक गई है।

उसका काम करने का सलीका उसके पूरे व्यक्तित्व से दस हाथ आगे था। जूस का गल्लास थामे हम दोनों ड्राइंगरूम में आ गए। मेरी असहजता उससे छपि नहीं रही।

“आप आराम से बैठें, यहाँ कोई नहीं आता।”

“क्या मतलब?”

“यही कि मेरा घर मेरे प्रोफेशन का हिस्सा नहीं है।” मुझे उसकी ढट्टिई भद्दी लगी।

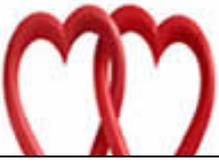
“खूबसूरत नाम रख देने से कोई गलत काम सुधर नहीं जाता, तुम जो कर रही हो वो गलत है और गलत ही रहेगा। और एक बात ! ऐसा कब तक चलेगा? तुम न सही पर उम्र तो थक जाएगी।”

वह शायद मेरे हर सवाल का जवाब देने को तैयार बैठी थी- एक वक्त ऐसा आता है जब शक्ल बदलने लगती है, मुरझाये संतरों की सी चमड़ी हर औरत के मन का डर होती है। हो सकता है आपका भी हो। मैं उस दौर का सामना भी कर लूंगी

शायद तब तक रटियर कर जाऊँ या पहले ही ऐसा समय कभी भी आ सकता है।

उसके बोलने के अंदाज़ से लगा जैसे संन्यास लेने वाली हो !

मेरी चुभती नज़र को वह झेल गई और अपनी बात कहती रही।



“सही मायने में जब करियर शुरू किया था तब मैं भी आपकी तरह ही सोचती थी पर अनुभवों ने सखिया क्वि दमिग का इस्तेमाल चाहे जतिना भी करो, पर मर्द ! मर्द हमें औरत महसूस कराने से नहीं चुकता। आप चाहे अपने आपको करियर

वुमन, वाइफ, हॉउस-वाइफ कुछ भी कहें पर आपकी हकीकत सिर्फ आप ही जानती है कोई दूसरा नहीं... इसलिए मैं जसि हाल में हूँ, फलिहाल खुश हूँ।”

शब्दों को चुनने का उसका खास तरीका था, वह बहुत चालाकी से अपनी सोच को मार्केट करने में सफल हो जाती थी। उसका मनना था क्वि कोई कामयाबी बेदाग नहीं हो सकती।

“आप चाहें तो बेतकल्लुफ होकर मेरे घर में घूम सकती हैं, मैं तब तक खाना लगाती हूँ।”

उसकी पेंटग्लिस, कतिबें, कट ग्लास, टेराकोटा और ब्लू पोटर्री का बेहतरीन कलेक्शन पूरे घर में सजा था। कमरे में सजी कसि चोज से बेवजह टकरा न जाऊँ, इसलिए छोटे छोटे कदम लेती मैं इधर-उधर टहलती रही और उसकी बातें भी सुनती

रही।

म्यूजिक सिस्टम पर एक नशीली धुन बज रही थी। उसके पास कोने में क्रिस्टल के एक बॉल में ढेर सारे रंग बरिगे चकिने पत्थर पड़े थे। उन पत्थरों के साथ पड़े थे कई वजिटिगि कार्ड्स।

मुझे वजिटिगि कार्ड्स रखने का यह ढंग बड़ा अजीब लगा।

थोड़ा झुक कर देखा तो उन पर छपे कुछ नाम बड़े वजनदार लगे।

जाने अनजाने मेरा हाथ उनकी तरफ बढ़ गया। कुछ ही कार्ड्स ऊपर-नीचे किये होंगे क्वि एक कार्ड पर जा कर मेरी नज़र अटक गई।

मैं ठण्डी पथराई आँखों से कार्ड को देखती रह गई।

तभी उसने मुझे खाने की मेज़ से आवाज़ दी- अरे आप क्या देखने लगी? वह मेरे क्लाइंट्स का कोना है। सभी वजिटिगि कार्ड की शकल में यहाँ रहते हैं। उन्हें वहीं पड़ा रहने दीजिये।

मैंने कार्ड को उठा कर अपनी साड़ी के पल्लू में छुपिया और लड़खड़ाते हुए डायनिग टेबल तक पहुँची, कहा- सुनो, मैं अब चलती हूँ। खाना फरि कसि दनि खाऊँगी।

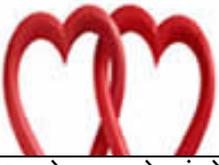
मैं बड़ी मुश्कलि से सिर्फ इतना ही कह पाई और दरवाज़े की तरफ बढ़ गई।

मेरा दर्द से नचिड़ा चेहरा देख वह वहीं थम गई।

काँटों की तरह कई सवाल मेरे दिलोदमिग पर एक साथ उग आये पर मैं उनका जवाब पाने के लिए वहाँ रुकी नहीं।

उसके दरवाज़े से बाहर नकिलते ही ठण्डी धूप की रोशनी में मैंने चुरा कर लाये गए कार्ड पर छपा नाम दोबारा पढ़ा- ‘सुबोध राय चौधरी’

कार्ड की छपाई बहुत ताज़ी लगी, सुबोध की महक अभी तक कार्ड से अलग नहीं हुई थी पर मैं सुबोध से एक ही झटके में कट गई।



अपने घर को संजोने के लिए कतिने जतन कयि। सुबोध से जुड़ी मेरी आस्था और वशिवास और मेरी इच्छाओं और संकल्पों की शक्ल में पछिले 25 सालों से मेरे अन्दर कतिने ही रूपों में पलता रहा। मेरे हस्से आई इस हार का न मैं गला घोट सकती

हूँ और न ही स्वीकार कर सकती हूँ।

अपनी कहानी के लिए करिदार ढूढने नकिली में खुद एक करिदार बन गई।

अब कहानी किस पर लिखूँ अपने पर या कार बोस पर ?